REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 7 | ISSUE - 9 | JUNE - 2018

बिहार के बदलते परिवेश में राजनीतिक चेतना

डॉ. शम्भु नाथ सुमन
बी० ए०, एम० ए० (इतिहास), पी-एच. डी.
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वर नगर, दरभंगा

भूमिका

बीसवीं शताब्दी बिहार के इतिहास में विशेष महत्व रखता है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में तीव्र आर्थिक परिवर्तन बिहार में दृष्टिगोचर होता है। कृषि का वाणिज्यिकरण, रेलवे का विकास, शहरीकरण में तीव्रता, आदि कुछ ऐसे आर्थिक परिवर्तन हुए जिन्होंने परम्परागत सामाजिक ढ़ाँचे पर विशेष दबाव डालना प्रारम्भ किया। इसी शताब्दी में बिहार में आंचलिक चेतना (Regional Consciousness) का विकास हुआ, जिसने अन्ततः पृथक राज्य के रूप में बिहार को स्थापित किया। साथ ही औपनिवेशिक एवं उत्तर-औपनिवेशिक काल में यहाँ की कृषि-अर्थव्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुआ, स्वतंत्र अस्तित्व में आने के बाद बिहार ने देश की स्वतंत्रता आन्दोलन में अहम् हिस्सेदारी का निर्वहन किया। इसके अलावे कांग्रेस का नेतृत्व, स्वामी सहजानन्द एवं किसान आन्दोलन, समाजवादी, साम्यवादी एवं नक्सली आन्दोलनों ने भी बिहार के समाज में उत्पन्न आन्तरिक अन्तर्विरोध एवं नवीन विचारधाराओं को प्रस्फुटित होने में अहम् भूमिका का निर्वाह किया। इन सभी राजनीतिक तथ्यों के अलावे बिहार के परम्परागत समाज में रूढ़ीवादी जाति-व्यवस्था ने राजनीतिक धाराओं को भी काफी प्रभावित किया। आधुनिक शिक्षा के प्रसार एवं जाति सभाओं के गठन में बिहार के परम्परागत समाज में जातीय चेतना एवं श्रेष्ठता के लिए प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में शहरीकरण की प्रक्रिया तेज हुई, इस तीव्र शहरीकरण की प्रक्रिया ने परम्परागत समाज पर बदलाव के लिए दबाव डालना प्रारम्भ किया। जिसके चलते सामाजिक तनाव की स्थिति उत्पन्न हुई और कमोवेश पूरी शताबदी भर बिहार में दिखता है। इस सामाजिक टकराहट एवं तनाव ने बिहार में राजनीतिक एवं जातीय चेतना को विकसित किया जो कमोवेश आज भी चल रहा है। १९७० के दशक के बाद जैसे-जैसे बिहार में आधुनिक शिक्षा का विस्तार होता गया, बिहार ने शिद्दत से बंगान के शोषण के बारे में सोचना प्रारम्भ किया। फलतः बिहारी या क्षेत्रीय चेतना का विकास बिहार में होता गया, जिसके फलस्वरूप एवं प्रशासनिक कारणों से बिहार को बंगाल प्रेसीडेंन्सी से इतर एक राज्य का दर्जा मिला। पुथक् प्रान्त के रूप में १ अप्रैल १९१२ को बिहार का गठन हुआ, एवं अगले लगभग तेइस वर्षों तक उड़ीसा अनावश्यक रूप से इससे जुड़ा रहा। भारत में औपनिवेशिक शासन और इसके शोषण के फलस्वरूप हुए सामाजिक-आर्थिक राजनीतिक एवं प्रशासनिक परिवर्तनों के कारण इसके समाज का आन्तरिक संतुलन बिगड़ने लगा एवं जातीय व्यवस्था में परिवर्तन एवं बदलाव उभरने लगे। हलांकि यह भी सत्य है कि जातियों एवं उनके बीच के आपसी समीकरण समय-समय पर बदलते रहे हैं, किन्तु यह परिवतर्न अधिकतर मध्यम जातियों में परिलक्षित होती है। औपनिवेशिक बिहार में नौकरशाही पर मुख्यतया बंगाली, कायस्थों एवं मुसलमानों का वर्चस्व था, अधिकतर इसी तबके के लोग आधुनिक शिक्षा में निष्णत

भी थे। वहीं दूसरी ओर जमींदारी मुख्यतः भूमिहारों, ब्राह्मणों, राजपूतों कायस्थों एवं उच्च वर्गीय मुसलमानों के अधीन थी। इस प्रकार हम पाते हैं कि समाज में मध्यम वर्ग का ठीक से उदय नहीं हो पाया था, एवं अभिजात्यों एवं सवर्णों का समाज एवं सरकार पर दबदवा था। साथ ही यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि कृषि के वाणिज्यिकरण एवं व्यापार में विसतार के कारण छोटे-छोटे उद्योग उभर रहे थे, साथ ही प्रशासनिक सुधार के क्रम में नए जिले एवं सब जिले कायम हो रहे, फलतः नगरीकरण का दर भी काफी तीव्र नजर आता है। इन आर्थिक प्रशासनिक सुधारों ने आधुनिक शिक्षा को विस्तार देना प्रारम्भ किया एवं सामाजिक चेतना का जन्म दिया। जैसे-जैसे नगरीकरण का दर तीव्र होते गया, लोगों में शिक्षा के प्रति चेतना जगती गयी। शिक्षा के प्रसार ने मध्यम वर्ग को जन्म दिया। साथ ही नगरीकरण एवं नव-औद्योगिकरण ने रोजगार के नए अवसर उपस्थित किए। अभी तक इन अवसरों का उपभोग बंगाली कुछ हद तक बिहारी कायस्थ या मुसलमान करते थे। नए मध्यम वर्ग के उदय ने बिहारियों को इन अवसरों का लाभ उठाने के लिए उकसाया, फलतः मध्यम वर्ग ने 'बिहार के बंगाल से पृथक्करण' के लिए आवाज बुलन्द की। अन्ततः १९१२ में इन्हें इसमें सफलता भी हासिल हुई और बिहार का बंगाल से इतर निर्माण हुआ। अब इस नव-निर्मित बिहार के प्रशासनिक एवं आर्थिक अवसरों पर कब्जा जमाने के लिए बिहार के विभिन्न जातियों में आपसी प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हुई। फलतः बिहार में जातीय सभाओं का गठन होने लगा। विभिन्न जाति के पढ़े लिखे एवं असरदार लोगों ने अपनी-अपनी जाति को संगठित करने का प्रयास प्रारम्भ किया। इस क्रम में जाति सभाओं का गठन लगभग बिहार की सभी जातियों में हुआ। ब्राह्मणों से लेकर अछूतों एवं अन्त्यजों तक में जाति सभाओं का गठन हुआ। इन जाति सभाओं के द्वारा जाति-विशेष को संगठित एवं विकसित करने का प्रयास किया किया गया। शिक्षा के प्रसार को काफी शिद्दत के साथ सभी जाति सभाओं ने उठाया। फलतः बीसवीं शताब्दी में बिहारियों में शिक्षा के प्रति रूझान काफी बढ़ा। साथ ही जाति सभाओं ने मद्यपान, जुआ, मांसाहार एवं बहु विवाह प्रथा जैंसी सामाजिक कुरीतियों पर भी प्रहार किया। वस्तुतः सभी जातियों ने अपने में सुधार लाने का प्रयास किया, और काफी हद तक उन्हें इसमें सफलता भी मिली।

बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक तक जातीय चेतना

बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक तक इस जातीय चेतना ने नई करवट लेनी प्रारम्भ कर दी। जातियों में सामाजिक श्रेष्ठता के लिए प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हो गई। विभिन्न जाति के लोगों ने स्थापित परम्नरागत सामाजिक पायदान में अपनी जाति की श्रेष्ठता के लिए प्रयास करने लगे। विभिन्न जाति सभाओं ने अपने विकास क्रम की नई धारणाएँ पेश की। ये अपने को उच्च वर्ग खासकर द्विज वर्गों से जोड़कर देखने लगे। लगभग सभी जातियों ने अपना उद्भव 'ब्राह्मण' या 'क्षत्रिय' जाति से तलाशने का प्रयास किया और जाति प्रथा के विकाश के नए सिद्धान्त उभरकर सामने आने लगे। इस समय सरकारी स्तर पर जनगणना काल में उच्च एवं निम्न जातियों के आधार पर गणना की जाति थी एवं सामाजिक श्रेष्ठता का पायदान निर्धारित किया जाता था। फलतः जाति सभाओं ने जनगणना अधीक्षक के समक्ष प्रतिवेदन देना प्रारम्भ किया और सामाजिक क्रम में उच्चतर श्रेणी के लिए दावेदारी प्रस्तुत करने लगे। यह स्थिति १९३१ के जनगणना काल तक बनी रही। १९२१ में बिहार में शेष भारत के साथ निर्वाचन की पद्धति प्रारम्भ हुई। विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं में जाती विशेष के हिस्सेदारी के लिऐ राजनीतिक समीकरण बनने लगे। जातिगत आधार पर पहला ऐसा संघ 'त्रिवेणी संघ' के नाम से सामने आया। मध्यम श्रेणी की जातियों ने सामूहिक रूप से अपने को एक झण्डे के नीचे गोलबन्द करने का प्रयास किया। इस प्रकार संसदीय राजनीति का श्रीगणेश ही बिहार में जाति आधारित बोटों के आधार पर हुआ। हलांकि यह समय देश की स्वतंत्रता का था, और राजनीतिक दल स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े थे, यहाँ पर जाति आधारित राजनीति गौण तो रही, किन्तु बिहार इससे मुक्त नहीं रहा। राजनीतिक स्तर पर समाजवादी, साम्यवादी एवं आगे चलकर नक्सलवादी सभी विचारधाराएँ बिहार में पनपीं, किन्तु सामाजिक आधार पर बिहार जातिय गणित में ही उलझा रहा। सभी राजनीतिक दलों में विभिन्न जाति के लोग जनसंख्या के आधार पर अपना प्रतिनिधित्व मांगते रहें, पहले से विकसित जातियाँ सभी

राजनीतिक दलों के शीर्ष नेतृत्व पर कब्जा जमा कर रखने में प्रतिबद्ध दिखीं। एवं मध्यम एवं निम्न श्रेणी की जातियाँ उन्हें वहाँ से अपदस्थ करने या अपनी हिस्सेदारी की मांग करती रहीं। इस प्रकार बिहार का समाजिक वातावरण ही राजनीति पर हमेशा हावी रहा।

बिहार की लगभग ९७ प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर जीवन निर्वाह कर रही थी। यह स्थिति कमोवेश प्रथम विश्वयुद्ध तक बनी रही। कुछ उद्योगों का विकास बिहार में अवश्य हुआ, किन्तु एक या तो ये उद्योग कृषि-उत्पाद पर ही आश्रित थे या फिर इनकी संख्या काफी कम थी। कृषि पर सर्वाधिक दबाव था और कृषि के तकनीक परम्परागत थे, उपर से औपनिवेशिक शासन में भू-राजस्व शोषणकारी था, कृषि में नील, गन्ना और जूट फायदे के यही तीन उपज थे, जिनपर अंग्रेजों या बड़े जमींदारों का कब्जा था। आर्थिक रूप से कृषक या कृषि मजदूरों की आर्थिक स्थिति दयनीय थी। शोषण इतना अधिक था कि सीमान्त किसान लगातार भूमिहीन कृषि मजदूर बनते जा रहे थे। पूरा समाज सूदखोरी एवं महाजनी के विकट संकट से त्रस्त था। स्वामी विद्यानन्द के नेतृत्व में चला किसान आन्दोलन इसी शोषणकारी महाजनी व्यवस्था का उपज था, वहीं गाँधी का चम्पारण सत्याग्रह बड़े जमींदारों द्वारा छोटे किसानों के शोषण का परिणाम था। स्वामी सहजानन्द सरस्वती के नेतृत्व में किसान सभा की स्थापना हुई और तीव्र किसान आन्दोलन चला फिर भी किसानों खासकर भूमिहीन कृषि मजदूरों की समस्या स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही मुखर स्वरूप ग्रहण कर सकी।

जातीय आन्दोलनों का समाज पर दवाब

इन कठिन आर्थिक परिस्थितियों में जातीय आन्दोलनों ने समाज पर खासा दबाव डाला। जैसे कि हमने उपर वर्णन किया है सभी जातियों ब्राह्मण से दुसाध तक में जातीय सभाओं का गठन हुआ था और समाज सुधार ने आन्दोलन का स्वरूप ग्रहण कर लिया था। इसी समय आर्य समाज ने भी बिहार में अपनी जड़ जमा ली। आर्य समाज के कामकाज के चलते पिछड़े समुदायों-यादव, कुर्मी, कोइरी, दुसाध, चमार, और अन्य पिछड़ी और निम्न जातियों के बीच जनेऊ आन्दोलन की धूम मची। पिछड़े समुदायों ने शिक्षा, बेगारी, जाति-लगान, और धार्मिक संस्कारों के लिए सवर्णो के विरूद्ध आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने अपना नाम बदला एवं जाति प्रदशित करने वाले उपनामों को छोड़कर 'सिंह' उपनाम जोड़कर क्षत्रित्व ग्रहण करने लगे। सवर्णो ने इसका प्रबल विरोध किया। इस सामाजिक आन्दोलन की झलक हमें सतीनाथ भादुड़ी के 'ढोढाय चरित मानस' और फणीश्वर नाथ रेणु के 'मैला आंचल' में देखने को मिलता है। निम्न वर्गों का यह प्रतिरोध पूरी बीसवीं शताब्दी में बिहार में देखने को मिलता है। जो जनेऊ आन्दोलन से चलकर 'सामाजिक-न्याय' तक लगातार चलता रहा है। प्रस्तावित शोध प्रबन्ध में बिहार के समाज में हुए इन्हीं सामाजिक परिवर्तनों को प्रतिपाध्य विषय बनाया गया है।

टकराव और मध्यमार्ग का संयुक्त पथ

जब घाटी में भारी मतदान हो जाए और लोग उत्साह से वोट डालने बाहर आएं तो यह पूछा जा सकता है कि क्या घाटी हिंसा से मुंह मोड़ रही है? कश्मीर घाटी में सईद अलीशाह गिलानी ने चुनावों का बहिष्कार करने का ऐलान किया था। लेकिन पहले चरण में तो उनके ऐलान की पूरी तरह अनदेखी की गई। गिलानी ओर उनके हिमायतियों के लिए यह सिद्धांत का प्रश्न है। लेकिन लगता है कि पिछले कुछ सालों में कश्मीर में भी एक ऐसा वर्ग पैदा हो गया है कि जो अहिंसक तरीकों से ही अपने उद्देश्य तक पहुंचना चाहता है। इसके लिए उन्हें किसी राजनीतिक विचारधारा को अपनाने की आवश्यकता ही नहीं और न पार्टियों के झंडे तले काम करना होगा। कश्मीर में टकराव और मध्यमार्गियों का भी यह चुनाव हो रहा है।

पहले चरण में दक्षिण कश्मीर यानी अनंतनाग मंडल में कुछ गांवों में तो मतदान प्रतिशत ८४ प्रतिशत हो गया था। लेकिन इससे यह अंदाज नहीं लगाना चाहिए कि जो हथियार का रास्ता अपनाना चाहे हैं, उन्होंने हथियार डाल दिए हैं। आरम्भ में ही एक महिला उम्मीदवार हसीना बेगम को आतंकवादियों ने गोली से उड़ा दिया। हालांकि ऐसी बहुत सी घटनाएं नहीं हुई लेकिन इसका असर

महिला उम्मीदवारों पर तो पड़ा ही है। हालांकि कोई नहीं जानता कि नतीजों के बाद पंचायतों का स्वरूप क्या होगा लेकिन एहतियात के तौर पर जहाँ उमर अब्दुल्ला यह कहते हैं कि यह जनमतसंग्रह नहीं है और वहीं महबूब का कहना है कि लोगों ने उस लोकतांत्रिक व्यवस्था को एक और मौका दिया है जिसका अवमूल्यन स्वयं सरकार ने किया है।

बिहार में वर्ष २००६ में जब पंचायतों में ५० फीसद आरक्षण के साथ विभिन्न पदों पर जीत कर आई तो चारों तरफ आरोपों के शोर थे-महिलाएं पंचायत नहीं चला सकती हैं। वह तो सिर्फ रबर स्टाम्प रहेंगी। काम तो उनके पति, बेटा, पिता, भाई या कोई पुरुष रिश्तेदार ही करेंगे। इन तानों को सुनते हुए भी महिला जनप्रतिनिधियों ने अपने हौसले नहीं खोए। तब द हंगर प्रोजेक्ट ने उस वक्त प्रदेश के चार जिलों के १००० से अधिक महिला जनप्रतिनिधियों का क्षमतावर्द्धन करने तथा राजनीतिक गुर सिखाने का काम किया। आज यह अभियात बिहार के १७ जिले के ४७ प्रखण्ड के ७४२ पंचायतों के ५००० संभावित महिला नेताओं के साथ सघन रूप से चलाया जा रहा है।

इन प्रयासें के उत्साहवर्द्धक परिणाम मिले। फिर तो कई उदाहरण सामने आएं, जहां महिला जनप्रतिनिधियों ने अपने काम से पंचायत को नई दिशा दी। पांच साल की इस अवधि में उन्होंने पंचायतों में योजनाओं का क्रियान्वयन निर्माण कार्य के साथ सामाजिक विकास के भी काम किए। महिला जनप्रतिनिधियों ने स्वशासन को सही संदर्भों में समझने की कोशिश की। उन्होंने ग्राम सभा के साथ-साथ वार्ड सभा को भी तबज्जो दिया। लेकिन यह सच है कि बहुतेरी महिलाओं को न तो वास्तव में दायित्व के निर्वहण का अधिकार मिला और न ही निर्णय लेने की आजादी।

पंचायतों में ५० फीसद आरक्षण ने सरकार, समाज एवं महिला नेतृत्व के पैरोकार के सामने नई बहस छेड़ दी है। बिहार पंचायती राज व्यवस्था में नित्य नई चुनौतियाँ बढ़ रही हैं। गौरतलब है कि जहां पहले दहेज में घर परिवार के वैभव के सामान लिए जाते थे, अब वोट की खरीद के लिए महिलाओं पर दबाव बनाए जाते हैं। परिणामस्वरूप अब पंचायत में राजनीति करने की महत्त्वाकांक्षा रखने वाली महिलाओं के विरुद्ध हिंसा हो रही है। मुजफ्फरपुर जिले के पारू प्रखंड के जाफरपुर पंचायत की मुखिया प्रत्याशी प्रियंका अपनी जान गवां बैठी। कारण रहा-वोट खरीदने के लिए मायके से २ लाख रुपए न ला पाना। इसी तरह की और भी कई घटनाएं हुई जो साबित करती हैं कि महिलाओं के प्रति हिंसा के स्वरूप एवं कारणों में तब्दीली हुई है। यह एक नई चोट है-महिलाओं के राजनीतिक अधिकार पर।

निस्संदेह बिहार के पंचायती राज व्यवस्था में महिला नेतृत्व की राहें बहुत मुश्किल हैं लेकिन बावजूद इसके वे पंचायत को अपना नेतृत्व देने के लिए उत्साहितत हैं। २०११ के पंचायत चुनाव महिला नेतृत्व को बढ़ावा देने, समुदाय द्वारा उन्हें स्वीकार्य करने एवं सशक्त पंचायती राज हेतु स्वीप की तरफ से एक अभियान चलाया जा रहा है। यह पंचायत की राजनीति में महिलाओं की भागीदारी का उद्देश्य को स्थापित करने के लिए है। महिला नेतृत्व को पंचायत चुनाव में स्वीप कर, पंचायत से सभी कमजोर पहलुओं को दुरुस्त करता और समानता पर आधारित विकसित समाज बनाने की पहल करना है।

बिहार में वर्ष २०११ का पंचायत चुनाव के तीसरे चरण से गुजर चुका है। अभी ७ और चरण बाकी हैं, जहाँ के मतदाता अपने गांव में अपने राज की अवधारणा को सफल बनाने के लिए योग्य नेतृत्व का चयन करेंगे। बेशक महिलाएं राजनीति के सकारात्मक मायने समझ चुकी हैं और वे अपनी इस महत्त्वपूर्ण भूमिका को खुल कर निभाने में लगी हुई हैं। पंचायत चुनाव के दस्तक देने से पूर्व ही महिलाओं ने चुनाव की रणनीति बनानी शुरू की। उन्होंने महिला मतदाताओं को राजतीति और इसमें उनकी अहम भूमिका से भी अवगत कराया। पूर्व की महीला जनप्रतिनिधि पुनः पंचायतों में चुनकर आने और पिछले पांच सालों में सीखी गई बातों को जमीन पर उतारने के लिए व्याकुल हैं। दूसरी तरभ घर के आंगन की महिलाएं भी पंचायत की पगडंडियों पर अपने सफर की शुरूआत के लिए उतावली हैं। वह नेतृत्व करना चाहती हैं। अपनी पंचायत का, अपने समुदाय का, समाज का-जहाँ अभी बहुत काम करना बाकि है। सशक्त महिला नेतृत्व के माध्यम से मजबूत पंचायती राज का सपना तभी साकार होगा जब महिला समुदाय की सक्रिय और सजग भागीदारी पंचायती राज व्यवस्था में होगी।

निष्कर्ष–

विश्व के शोधकर्मियों को भारत का प्रजानंत्र बरबस आकर्षित करता है क्योंकि यहां प्रतिनिधित्व के लोकतंत्र के बजाय प्रतिभागिता का लोकतंत्र है। प्रतिनिधित्व का लोकतंत्र जनता का, जनता के लिए तो है पर जनता द्वारा नहीं। इसमें जनप्रतिनिधि शासन करते हैं। पंचायत में जनता द्वारा प्रतिभागिता या सहभागिता के लोकतंत्र को लेकर बहस आज भारत सहित पूरी दुनिया में तेज हुई है। १९९८ में क्रुक और बैन्योर द्वारा किए गए विश्व बैंक के एक आकलन के मुताबिक, ७५ में से १२ विकासशील देश जिनकी आबादी ५ मिलियन से ज्यादा है, वहां सत्त के प्रतिनिधायन/हस्तांतरण की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है। परिवर्तन के कई ऐसे कारण हैं जिनको जानने-समझने की दरकार है। एक तो विचार के परिवर्तन की बात है, जो सत्ता में उस भागीदार को महत्त्व देता है, जिसकी भागीदारी अभी सबसे कम है। दूसरा महत्त्वपूर्ण बिंदु है कि हम स्थानीय शासन से उम्मीद कर सकते हैं कि वह समाज में वंजितों और दलितों को विकास की मुख्यधारा में लाकर लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के लक्ष्य को संभव बनाए क्योंकि पिरामिडीय शासन संरचना में एक का बोझ सौ पर आने का खतरा है। गांधी की भाषा यह जल तरंग की तरह एक से शुरू होकर विश्व मानवता तक पहुंचे। पर विडम्बना है कि प्रतिनिधित्व के लोकतंत्र को यदि मतदाता नहीं मिलते तो सहभागिता के लोकतंत्र को कायदे के उम्मीदवार नसीब नहीं हैं।

संदर्भ सूची :-

१. चौधरी, वि०वि० : 'एग्रेरीयन मूभमेन्टस इन बिहार एण्ड बंगाल, १९१९-३९, बी० आर० नन्दा (सं०) सोसियालिज्म इन इण्डिया, दिल्ली, १९७२.
२. श्री निवास, एम. एन. : आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, दिल्ली, १९९६.
३. ळट्टन, जे० एच० : भारत में जाति प्रथा, दिल्ली, १९९३
४. धुर्ये, जी० एस० : कास्ट एण्ड रेस इन इंण्डिया, बम्बई, १९६४.
५. दत्ता, के० के० : हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेन्ट इन बिहार, भोल्यूम्स - ३, पटना, १९५७.
६. देसाई, ए० आर० (सं०) पिजेंट स्ट्रगल्स इन इण्डिया, दिल्ली, १९७९
७. क्लाइव, डी० वी० : द हिस्ट्री ऑफ मिथिला एण्ड द रेकार्डस ऑफ द दरभंगा राज, मॉडर्न एशियन स्टडीज, १०, १९७६.
८. कुमार, अजित : शोसल टेंशन एण्ड पॉलिटिकल मोबिलाइजेशन इन बिहार, १९७२-१९४७, पटना, २००७.
९. कुमार, नरेन्द्र सिंह : बिहार में निजी सेनाओं का उदभव और विकास, दिल्ली, २००५
१०. मिश्र, गिरीश : अग्रेरियन प्राब्लेम्स ऑफ द परमानेन्ट सेटलमेन्ट : ए केस स्टडी ऑफ द चम्पारण, दिल्ली, १९७८.